# शिक्षक और शिक्षा दर्शन

**अनानास कुमार**

आज की स्कूली शिक्षा की परिस्थितियों में शिक्षक की कमजोर तैयारी एक अहम मसला है। इसे आम तौर पर शिक्षक-शिक्षा की अप्रासंगिकता एवं सन्दर्भहीनता से जोड़ कर देखा जाता है। इस पर बहुत चर्चा भी होती है। यह आलेख डॉ. के.एल. श्रीमाली, हर्बट स्पेंसर, आचार्य बिनोवा भावे के शिक्षा सम्बन्धी दार्शनिक विचारों की रोशनी में लिखा गया है। शिक्षक-शिक्षा के प्रमुख आधार क्या हैं? एक शिक्षक को शिक्षा दर्शन की समझ होना क्यों जरूरी है? यह समझ उन्हें अपने अध्यापन कार्य को बेहतर बनाने में किस तरह से मदद करती है? आलेख में ऐसे ही कुछ सवालों पर विचार किया गया हैं । सं.

शिक्षक बनने की प्रक्रिया में शामिल होने के दौरान पढ़ने-लिखने के क्रम में यह अनुभव हुआ कि वास्तव में शिक्षक-शिक्षा के तीन प्रमुख आधार होते हैं, यह हैं– दार्शनिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक। जिसमें दार्शनिक आधार सबसे पुराना और महत्वपूर्ण है। हालाँकि व्यावहारिक और कक्षा-कक्षीय (बी.एड,एम.एड. और डी.एल.एड आदि) बातचीत में शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार प्रमुखता से दिखाई देते हैं, किन्तु मेरी समझ में दार्शनिक आधार इसलिए ज़्यादा महत्वपूर्ण लगता है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध शिक्षक की सोच और व्यवहार से होता है। जिसका गहरा प्रभाव शिक्षण कार्य व स्थल दोनों ही जगहों पर पड़ता है। अपने इस आलेख में मैंने अपने इसी अनुभव को समेटते हुए एक शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता व उसके कारणों के बारे में लिखने की कोशिश की है। मेरी समझ है कि अपने सम्पूर्ण शैक्षणिक जीवन काल में कई ऐसे अवसर आते हैं जब एक शिक्षक को शिक्षा दर्शन के आधार की आवश्यकता पड़ती है|

## शिक्षण के स्वरूप को पहचानने के लिए

शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करने अर्थात् शिक्षक बनने के बाद हर शिक्षक की यह कामना होती है कि वह अपने कार्य में सर्वोच्च सफलता प्राप्त करे। किन्तु शिक्षणशास्त्र के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रायः दोनों ही अनुभव यह बतलाते हैं कि कार्य में सफलता केवल कामना से नहीं बल्कि कार्य के स्वरूप पर भी निर्भर रहती है। अतः शिक्षक भी अपने कार्य में तभी सफल होता है जब वह शिक्षण के स्वरूप को ठीक से पहचाने। शिक्षण का स्वरूप शिक्षा दर्शन निश्चित करता है। अतः शिक्षक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह शिक्षा दर्शन से भी परिचय प्राप्त करे।

वर्तमान शिक्षा के परिवेश और नीतिगत सन्दर्भ में तो शिक्षक और शिक्षा दर्शन सैद्धान्तिक रूप से एक दूसरे के बिना आधे-अधूरे प्रतीत होते हैं, किन्तु ज्योंही हम इसे एक शिक्षक के विद्यालयी जीवन की दैनिक कसौटियों के चश्में से देखने की कोशिश करते हैं तो ये दोनों ही अलग-अलग दिखते हैं। हालाँकि इसकी कई वज़हें गिनाई जा

सकती हैं मसलन, शिक्षक बनने की तैयारी के दौरान शुरू से ही इस विषय पर गम्भीरता से ध्यान न दिया जाना, शिक्षा के कार्यस्थल पर विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के दौरान इस पर से जाने अनजाने में ध्यान हट जाना, सेवाकाल के दौरान इसके बारे में लगातार बातचीत करने के मंच, मौके और रचनात्मक प्रक्रिया का अभाव और शिक्षक साथियों के बीच सतत एवं व्यापक रूप से नियमित बातचीत का के अवसरों की कमी आदि।

## जीवन दर्शन को चुनने के लिए

पेशेवर जीवन में प्रत्येक शिक्षक सदैव ही किसी न किसी विषय का अध्यापन करता है और वह स्वयं उस विषय विशेष का व्याख्याता, प्रवक्ता, प्राध्यापक या अध्यापक आदि कहने में गर्व का अनुभव करता है। अगर हम शिक्षक के इस विचार की गहराई में जाएँ तो यह समझ में आता है कि दरअसल यह गर्व की अपेक्षा चिन्ता का विषय अधिक प्रतीत होता है। क्योंकि अध्यापक को तो जीवन का शिक्षक होना चाहिए न कि किसी विषय का। इस बात की पुष्टि सुप्रसिद्ध प्रकृतिवादी दार्शनिक हर्बट स्पेंसर के उस दार्शनिक विचार से भी होती है जिसमें वे कहते हैं– "शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण जीवन की तैयारी है।" इसलिए अगर किसी विषय में उच्च कोटि का प्रकाण्ड पण्डित भी यदि उक्त विषय के सीखने वाले व्यक्ति के जीवन की समस्याओं से अपरिचित है तो वह विषय का सच्चा ज्ञाता कदापि नहीं कहा जा सकता है।

## बालक के सर्वांगीण विकास के लिए

एक सच्चे शिक्षक का शिक्षकत्व इसी में है कि वह सीखने वाले बालक के यथासम्भव सम्पूर्ण जीवन रहस्यों से परिचित हो और उसके जीवन के सन्दर्भ में ही अपने विषय को सम्पूर्ण ज्ञान की एक शाखा के रूप में उसे पढ़ाए जो उसे आगे के जीवन को जीने में मददगार हो। तभी वह एक सफल शिक्षक हो सकता है अन्यथा नहीं। जीवन के रहस्यों व उसके सम्बन्धों का परिचय व उसे पढ़ाने के तरीके शिक्षा दर्शन के अध्ययन से प्राप्त होते हैं, जो शिक्षक को सच्चा दार्शनिक और उसके द्वारा दी गई शिक्षा को व्यावहारिक और दैनिक जीवन में काम आने वाली शिक्षा बना सकता है।

इसके अलावा बालक के इस सर्वांगीण विकास में कौन-कौन से तत्व आते हैं और व्यक्तित्व के किन-किन पक्षों के विकास पर विशेष बल दिया जाए, इसका निर्णय लेने में भी शिक्षा दर्शन विशेष मदद करता है।

## शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों के ज्ञान के लिए

कई कारणों से आज का शिक्षक अधिकांशतः अपने विभाग को कोसते हुए न केवल यंत्रवत कार्य करता रहता है अपितु कागज़ी कार्यों की अधिकता से तनावयुक्त होते हुए बच्चों के स्वर्णिम भविष्य के लिए प्रदान की जाने वाली कक्षा-कक्षीय प्रक्रिया को रोचकता बनाने की बजाए उसे बोझिल बना देता है। जिसके परिणामस्वरूप सीखने वाले बच्चे तो शिक्षा से विमुख होते ही हैं, शिक्षक को भी अपने कार्य की समस्याओं की न तो अनुभूति होती है और न ही उसके बारे में उसे विचार करने की प्रेरणा मिलती है। ऐसी अवस्था में शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन शिक्षण के स्वरूप को निश्चित करते हुए शिक्षा के सभी पहलुओं पर विचार करता है। शिक्षा का क्या उद्देश्य हो, इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्या पाठ्यक्रम बनाया जाए, तथा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पढ़ाने की विधि क्या हो? इन सब बातों पर शिक्षा दर्शन में बात होती है।

सुयोग्य शिक्षक सदैव ही अपनी शिक्षण विधि में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करता रहता है क्योंकि वह इस बात का पक्षधर होता है कि कोई भी पद्धति प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं हो सकती है। यदि ऐसा होता तो विभिन्न

शिक्षण विधियों का निर्माण न होता। शिक्षण विधियों में सतत बदलाव लाने की इच्छा रखने वाले शिक्षकों के लिए भी शिक्षा दर्शन बड़ा मददगार साबित होता है।

शिक्षण पद्धतियों में बदलाव के बारे में आचार्य विनोबा भावे लिखते हैं– "जब आपसे यह कहा जाता है कि 'हम फ्रोबेल, पेस्टालॉजी या मोंटेसरी की पद्धति से शिक्षा दे रहे हैं', तो आप ख़ुशी से समझ लें कि यह केवल वाणी का श्रम है, यह शब्द-शिक्षण है, यह किसी भी पद्धति की अर्थशून्य नक़ल है, यह प्रेत है, इसमें प्राण नहीं है। शिक्षण यानी बीजगणित का कोई फार्मूला (सूत्र) नहीं है कि उसे लगाते ही उत्तर तैयार! आज दी जाने वाली शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है और न उसे देने की वर्तमान पद्धति ही वास्तविक पद्धति है। 'जो अन्दर है, वह सहज भाव से प्रकट होता है'– इस प्रकार जो प्रकट होता है, वही शिक्षण है।"

## शिक्षा प्रणाली में आए सामयिक दोष निवारण के लिए

अपने कार्यक्षेत्र के दौरान औपचारिक व अनौपचारिक मंचों पर शिक्षकों के साथ होती रहने वाली बातचीत में ऐसा प्रतीत हुआ है कि आज भी बहुत सारे शिक्षक, शिक्षा की वास्तविक समस्याओं से अनभिज्ञ हैं, अर्थात वे यह सोचते और कहते हुए मिल जाते हैं कि 'जैसा चल रहा है, वैसा ही ठीक है। ऐसा कहने के दौरान शायद वे इस बात से अनजान हो रहे होते हैं कि जिस प्रकार प्रत्येक प्रक्रिया में गुण-दोष रहते हैं उसी प्रकार शिक्षा रूपी इस सहजीवी प्रक्रिया में भी समय के प्रवाह के साथ कुछ दोष आ जाते हैं। शिक्षा पर भी देश और काल का सामयिक प्रभाव पड़ता है और कभी सामाजिक या राजनीतिक कारणों से परम्परागत प्रणाली ही बहुत दिनों तक चलती रहती है। एक ही प्रणाली के लगातार चलते रहने के कारण इसमें अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। एक जागरूक शिक्षक या सजग नागरिक के रूप में शिक्षा के इन गुण दोषों से अवगत होते हुए इसके निराकरण के लिए उद्यम करते रहना भी अति आवश्यक है। इन गुण दोषों का विश्लेषण और इसके सुधार के उपाय सुझाना व उसके विभिन्न कारण-परिणामों को गहराई से समझने में भी शिक्षा दर्शन अपनी प्रमुख भूमिका निभाता है।

## शिक्षा में सामयिक बदलाव के महत्त्व को समझने के लिए

शिक्षा में आए सामयिक दोष के सुधार की प्रक्रिया लगातार ही चलती रहती है और अपने देश के सन्दर्भ में तो 'शिक्षा सुधार' का नारा और भी जोरों से लगाया जाता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गठित राधाकृष्णन कमेटी से लेकर मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग, प्रो. यशपाल समिति आदि की सिफारिशें आज भी क्रियान्वयन का इंतज़ार कर रही हैं। इन सभी के काम व उद्देश्य लगभग एक होने के बाद भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अपेक्षाकृत कम ही सुधार हो पाया है। इन अल्प सुधारों के पीछे के कारणों का अगर हम ठीक से विश्लेषण करें तो पाते हैं कि इन सभी प्रयासों में शिक्षकों व उनके दृष्टिकोणों को बदलने की बात और प्रक्रिया को बातचीत के केन्द्र से काफी दूर ही रखा गया है, जो कि किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं जान पड़ता है। यही कारण है कि शिक्षा सुधार की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि शिक्षक का दृष्टिकोण न बदले। शिक्षक, शिक्षा सुधार की धुरी है और इस धुरी का दृष्टिकोण शिक्षा दर्शन से बनता है। शिक्षा दर्शन का अध्ययन शिक्षक को शिक्षा में सुधार या फिर सामयिक बदलाव के महत्व को समझने में भी मदद करता है।

## विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम समन्वयन सम्बन्धी ज्ञान के लिए

भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश शिक्षक आज भी घड़ी या फिर मनमौजी तरीके से कक्षा में जाकर केवल पढ़ना-पढ़ाना अपना कर्तव्य समझते हैं। ऐसे देश की शिक्षा के कार्य को

परिभाषित करते हुए डॉ. के.एल श्रीमाली कहते हैं–'भारत में शिक्षा का यह कार्य है कि देश की सांस्कृतिक परम्परा के मूलभूत तत्वों को खोजा जाए और यह देखा जाए कि वर्तमान परिस्थितियों में वे किस सीमा तक व्यवहृत हो सकते हैं।'

शिक्षण सदा स्वाभाविक रूप से होना चाहिए। अध्यापन काल के दौरान शिक्षक को सदैव ही ऐसा दृष्टिकोण बनाना चाहिए एवं अपना आचरण इस प्रकार का रखना चाहिए जिससे कि छात्र उनके संपर्क में आते ही शिक्षा ग्रहण कर ले। इन परिस्थितियों में शिक्षा दर्शन शिक्षक को सामान्यतः ज्ञान के विभिन्न विषयों में एवं विशेषतः शिक्षा की विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित करने में भी काफी हद तक मदद करता है। यदि इस समन्वय की ओर ध्यान न दिया जाए तो शिक्षक का कार्य प्रभावहीन होने लगता है। इसीलिए रस्क महोदय ने कहा है– "जो शिक्षक, शिक्षा दर्शन की उपेक्षा करते हैं, उन्हें अपने कार्य को प्रभावहीन बना डालने के रूप में इस उपेक्षा का दण्ड भुगतना पड़ता है।"

शिक्षा दर्शन शिक्षक को आचार्यवान बनने में सहायता प्रदान करता है और भाड़े के गुरु की अपेक्षा सच्चा गुरु बनने की प्रेरणा देता है। शिक्षा के क्षेत्र में आ रही दिन-प्रतिदिन की अनसुलझी समस्या इस बात के लिए भी आगाह करती है कि शिक्षक को शिक्षण की सफलता के लिए दार्शनिक बनाना ही पड़ेगा। डॉ. के.एल श्रीमाली की यह बात यहाँ बहुत ही सन्दर्भित लगती है, वे कहते हैं– "इस प्रकार शिक्षक का कोई शिक्षा दर्शन अवश्यमेव होना चाहिए, केवल यही नहीं, शिक्षक को छात्रों में जीवन दर्शन का विकास करने के लिए तैयार होकर इस व्यवसाय में प्रवेश करना चाहिए।"

अंततः मेरी समझ में एक सच्चा शिक्षक, सच्चा दार्शनिक भी होता है। वह लगातार शिक्षा दर्शन के विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन कर शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बच्चों की शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का निर्धारण करने का प्रयास करता रहता है। हालाँकि एक शिक्षक को शिक्षा विज्ञान से भी बड़ी सहायता मिलती है और वह अनेक समस्याओं को शिक्षा विज्ञान की सहायता से सुलझा भी सकता है, किन्तु बिना शिक्षा दर्शन के सफल शिक्षक होने में संदेह ही है।

**सन्दर्भ**


आचार्य विनोबा भावे (1972), *शिक्षण-विचार*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी

जेम्स एस. रॉस (1972), *शिक्षण सिद्धांत के मूल आधार*, रामनगर एस चन्द एंड कम्पनी, नई दिल्ली

आर. आर. रस्क (1956), *द फिलॉसफिकल बेसिक ऑफ एजुकेशन*, यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन प्रेस, लन्दन

आर. आर. रस्क (1972), *शिक्षा के दार्शनिक आधार*, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

के.एल. श्रीमाली (1965), *एजुकेशन इन चेंजिंग इंडिया*, एशिया पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली

स्वाति जैनः *भारत में शैक्षिक शिक्षा का विकास*

सर्वपल्ली राधाकृष्णन (2007), *धर्म और समाज*, रीड बुक्स,

विभिन्न विश्वविद्यालय के बी.एड., एम.एड के पाठ्यक्रम


---


अनानास कुमार डेढ़ दशक से ग्रामीण शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के शोध संकाय से जुड़कर कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : ananas.kumar@azimpremjifoundation.org